समानुभूति

२४ जून, २०२२ के लिए

अमी बन्सल और गरिमा बोरवणकर द्वारा लिखित व्याख्या

भाग ४

२४ जून, २०२२ को अपने जन्मदिवस पर श्रीगुरुमाई ने हमें समानुभूति का सद्‌गुण प्रदान किया। इस सद्‌गुण की व्याख्या के भाग ३ में हम दोनों—अमी और गरिमा—ने नीचे दिए गए पहलू का अन्वेषण करने में आपको मार्गदर्शित करना आरम्भ किया था :

> **समानुभूति समता या सादृश्य होने का बोध है जो गहन संवेदना या हमदर्दी, करुणा व समझ के भाव को जगाता है।**

हमने देखा कि समानुभूति किस प्रकार गहन संवेदना की ओर ले जाती है। व्याख्या के इस भाग में हम समानुभूति के एक अन्य गुण पर शोध करेंगे जिसका हमने ऊपर दिए वाक्य में उल्लेख किया है : करुणा।

एक ओर करुणा, संवेदनशीलता के समान ही है और दूसरी ओर दोनों ही स्पष्ट तौर पर भिन्न हैं।

'करुणा' एक हिन्दी शब्द भी है और संस्कृत शब्द भी, और इसी का समानार्थी शब्द है, 'दया'। इन दोनों शब्दों के अर्थों में, 'कोमलता, मृदुलता, सौम्यता' [या 'सहृदयता'], 'रहम', 'संवेदनशीलता' और 'दयालुता' या 'अनुकम्पा' भी सम्मिलित हैं।

करुणा और संवेदना, दोनों का उद्‌भव इस बोध से होता है कि इस संसार के सभी प्राणी एक ही हैं और परस्पर जुड़े हुए हैं। [हमने व्याख्या के भाग १ में समझाया था कि इसका वास्तव में क्या अर्थ है।] संवेदना और करुणा का *एहसास* कैसा होता है—यदि आप बस इसी के आधार पर इन्हें समझने की कोशिश करें तो हो सकता है कि ये दोनों आपको काफ़ी हद तक एक जैसी प्रतीत हों। उदाहरण के लिए, दोनों ही भावों में आपको ऐसा महसूस हो सकता है कि आपके अन्दर मृदुलता आलोड़ित हो रही है, उमड़ रही है और एक इच्छा, एक रुझान जगा रही है कि आप आगे बढ़ें और ज़रूरतमन्दों की मदद करें। आप संवेदना और करुणा को एक-दूसरे के सहचर यानी घनिष्ठ मित्र या हमराही यानी सहयात्री

मान सकते हैं—और यह भी हो सकता है कि आप समय-समय पर 'संवेदना' और 'करुणा', इन शब्दों को एक-दूसरे की जगह प्रयुक्त होते हुए सुनें।

तथापि, एक पाठक के रूप में आप समानुभूति की अपनी समझ को विकसित करने में लम्बी यात्रा कर चुके हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि इस व्याख्या की लेखिकाओं के रूप में हम दोनों ने अपनी समझ को लगातार उन्नत किया है! तो यह जानकर आपको आश्चर्य नहीं होगा कि जब आप इन दो शब्दों के अर्थ का विन्यास करने लगते हैं और प्रत्येक शब्द की बारीकियों को नज़दीकी से देखने लगते हैं तो उनके बीच का अन्तर अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है।

इस अन्तर को समझने का एक स्पष्ट और सरल तरीक़ा है, किसी बाहरी प्रेरणा द्वारा समझना जो आपके अन्दर संवेदना या करुणा की प्रतिक्रिया को प्रकट करती है। जैसा कि भाग १ में बताया गया है, संवेदना में समाहित हो सकता है, दूसरों का सुख *या* दुःख महसूस करना; इसमें शामिल हो सकता है, दूसरों की परिस्थिति के अनुसार, उनकी प्रसन्नता का आनन्द मनाना *या* उनके कष्ट को महसूस करना।

दूसरी ओर, करुणा का दायरा इससे थोड़ा अलग है। अकसर लोग करुणा तब महसूस करते हैं जब वे देखते हैं कि कोई व्यक्ति किसी कष्ट, दारुण पीड़ा या विपत्ति से गुज़र रहा है। परन्तु हम उस समय भी करुणा महसूस कर सकते हैं, और करते हैं, जब हम किसी व्यक्ति को कुछ ऐसी चीज़ पाने के लिए तड़पता हुआ देखते हैं जो उसने अभी पाई न हो; या जब हम किसी व्यक्ति को एक उच्च लक्ष्य को पाने हेतु कड़ी मेहनत करते हुए, कठोर परिश्रम करते हुए, त्याग पर त्याग करते हुए देखते हैं; या जब वे कुछ ऐसा जानने या समझने के लिए जूझ रहे होते हैं जो उनके लिए अपरिचित हो। करुणा तब उदित होती है जब हम उस दूरी को समझ पाते हैं कि एक व्यक्ति अभी कहाँ है और वह कहाँ पहुँचना चाहता है, कहाँ होना चाहता है, या करुणा तब उदित होती है जब हम सोचते हैं उस व्यक्ति को कहाँ होना चाहिए, वह व्यक्ति किस योग्य है। यह बढ़ती है, उस व्यक्ति के प्रति हमारी परस्पर मानवता की भावना से [या, यदि हमारी करुणा को पाने वाला कोई पशु, या कोई पौधा या प्राकृतिक जगत का कोई अन्य हिस्सा हो, तब व्यापक तौर पर यह भाव होता है कि वह हमारा संगी-साथी है।]। करुणा तब भी बढ़ती है जब हम *दूसरे व्यक्ति* की अच्छाई को—उसकी योग्यता, उसकी निष्ठा को और अपने प्रयत्नों के लिए उसकी लगन को समझ पाते हैं।

हमें तब भी करुणा महसूस हो सकती है जब हम किसी व्यक्ति को अति दयनीय दशा में, अति निर्धनता में जीवन व्यतीत करते हुए देखते हैं क्योंकि हम जानते हैं कि मात्र इसलिए कि वह व्यक्ति मानवरूप में इस ग्रह पर है, वह बेतहरीन चीज़ों का हक़दार है—उसे भोजन, आश्रय और सुरक्षा का भाव मिलना

चाहिए। हमें तब करुणा महसूस हो सकती है जब हम उन लोगों का इतिहास पढ़ते हैं जिन पर उनके नेताओं ने बार-बार अत्याचार किया, और जिसका परिणाम यह हुआ कि वे ऐसा जीवन जीने के अधिकार से वंचित रह गए जैसा उन्होंने अन्यथा चाहा होता। और हमें तब भी करुणा महसूस हो सकती है जब कोई हमें बताता है कि दूसरों के ध्यान के अनुभव सुनकर उसकी भी इच्छा होती है कि काश उसे भी ध्यान में वैसे ही अद्‌भुत अनुभव हों—भले ही उस व्यक्ति को ख़ुद भी ध्यान में महान अनुभूतियाँ होती हों! उस व्यक्ति को सुनने पर हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि वह व्यक्ति स्वयं अपनी अनुभूतियों की शक्ति और सौन्दर्य को देख नहीं पा रहा है, उनके मूल्य को समझ नहीं पा रहा है।

इस व्याख्या की एक लेखिका अमी, करुणा के सद्‌गुण के विषय में अपने जीवन का एक प्रसंग आपको बताना चाहती हैं। इस प्रसंग ने बाद के वर्षों में अमी को खोज के पथ पर अग्रसर कर दिया जो कि रहस्यमयी रहा है, जिसने उनके समक्ष अनेक अन्तर-दृष्टियों को उजागर किया है और साथ ही फलदायी भी रहा है। अमी कहती हैं :

> १९९० के दशक की शुरुआत में, एक दिन सुबह श्रीगुरुमाई गुरुदेव सिद्धपीठ में लगभग ५० गुरुकुल विद्यार्थियों को दर्शन दे रही थीं, जिसमें विश्वस्तगण, प्रबन्धकगण और विभाग-प्रमुख शामिल थे। हम 'स्वागतम्' में एकत्रित हुए थे जो आश्रम का एक प्रशान्त ध्यान-कक्ष है। मैं दर्शन-सहायिका के रूप में सेवा अर्पित कर रही थी, साथ ही मैं एक विभाग-प्रमुख भी थी।
>
> इस दर्शन के दौरान गुरुमाई जी ने हमें आश्रम में सेवा अर्पित करने के अपने अनुभव के बारे में बताने के लिए कहा। वहाँ उपस्थित एक महिला खड़ी हुईं और उन्होंने एक ऐसी परिस्थिति के विषय में बताया जिसमें उन्हें कई लोगों के साथ बातचीत करनी होती थी। जब वे महिला बता रही थीं तो हम सभी सुनने वालों को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि लोगों से बातचीत करते समय इस महिला के आचरण में कुछ अभद्रता या कुछ रूखापन रहा है।
>
> उस समय, गुरुमाई जी ने, सेवा अर्पित करते समय करुणा के सद्‌गुण को व्यक्त करने के महत्त्व के विषय में समझाया। उन्होंने समूह से पूछा, "करुणाशील होने का क्या अर्थ है?" उसके बाद गुरुमाई जी शान्त बैठी रहीं, ताकि हम सभी को इस प्रश्न पर चिन्तन करने का समय मिल सके।
>
> कुछ समय पश्चात् लोग अलग-अलग उत्तर देने लगे, जैसे कि "करुणा प्रेम है" और "करुणा दयालुता है।" जब सभी ने उत्तर दे दिए तब गुरुमाई जी ने अपना उत्तर बताया : "करुणाशील होना यानि ग़ैर आलोचनात्मक होना।"

जब मैंने गुरुमाई जी के इस उत्तर को सुना तो मैंने सोचा, "अरे वाह!" यह उत्तर मेरे लिए एक नया दृष्टिकोण था। जब मैं गुरुमाई जी के शब्दों के गहन अर्थ को समझने का प्रयास कर रही थी, मैंने चारों ओर देखा। मैंने ग़ौर किया कि अन्य लोग विचारमग्न दिखाई दे रहे हैं और मेरी ही तरह गुरुमाई जी के उत्तर को समझने हेतु भरसक प्रयास कर रहे हैं। अपने जीवन के उस समय तक के १७ वर्षों में, मैंने करुणा के विषय में इस तरह कभी नहीं सोचा था।

जब मैं गुरुमाई जी की सिखावनी—"करुणाशील होना यानि ग़ैर आलोचनात्मक होना"—के गहन अर्थ को समझने का प्रयास कर रही थी, तब मैंने स्पष्ट रूप से समझा कि कई बार मैं "अच्छा" या "बुरा" कहकर कितनी जल्दी दूसरों की और यहाँ तक कि खुद की आलोचना करती हूँ, दूसरों के व खुद के बारे में राय बना लेती हूँ। संसार के प्रति मेरा दृष्टिकोण इन विचारों और अवधारणाओं से बना और रँगा हुआ था कि क्या सही है और क्या ग़लत, क्या स्वीकारने योग्य है और क्या नहीं; और अपने इन्हीं विचारों व अवधारणाओं के आधार पर जो राय मैं बना लेती [जो कि अकसर अनजाने में या मेरे बिना सोचे-समझे बनाई गई होती] उसी दृष्टिकोण से मैं संसार को देखती। जैसे-जैसे मैं अपनी सिद्धयोग साधना करती गई, मैं इस बात के प्रति अधिकाधिक जागरूक होती गई कि किस प्रकार ये कठोर अवधारणाएँ मेरी अपनी ही बनाई हुई हैं। मैंने एक सुखद अभ्यास बना लिया जिसमें मैं एक-एक करके अपनी इन अवधारणाओं पर प्रश्न करने लगी और यह देखने लगी कि क्या वे सत्य के प्रकाश में टिकी रहती हैं।

इस प्रसंग पर विचार करते हुए हम दोनों, अमी और गरिमा ने इस विषय पर चर्चा की कि दूसरों के प्रति ग़ैर आलोचनात्मक होने का क्या अर्थ है। हमारा पहला विचार था : यह आसान नहीं है! और क्यों नहीं है? क्योंकि यह तो मनुष्यों की, और कई जानवरों की मूल संरचना में ही है—सोचना, विश्लेषण करना, अर्थ लगाना, मूल्यांकन करना, आकलन करना, जाँचना, अनुमान लगाना और निष्कर्ष निकालना। बुनियादी तौर पर हम ऐसा इसलिए करते हैं ताकि हम यह पता लगा सकें कि हमारे सामने जो कोई भी है या जो कुछ भी है, क्या उससे हमें कोई ख़तरा है—वह मित्र है या शत्रु।

अब, आलोचना करने की हमारी प्रक्रिया निश्चित तौर पर दोषयुक्त हो सकती है। ऐसा नहीं है कि हम हमेशा *सटीक* तरीक़े से ही मूल्यांकन करते हों कि किसी व्यक्ति से हमें कोई ख़तरा है या नहीं। और ऐसे मूल्यांकनों के लिए हमारा जो मापदण्ड होता है, वह आधारित होता है हमारी अपनी पूर्वकल्पित धारणाओं पर, किन्हीं प्रभावों में आकर हम जिस तरह की प्रतिक्रियाएँ देने के आदी हो चुके हैं उन पर, और वर्षों से हमने जो सीखा व जाना है, जो अनुभव किया है तथा जो हमें सिखाया गया है, उस पर।

तथापि, हमारी सहज प्रवृत्ति तुरन्त ही जाग उठती है। अकसर हम पल भर में ही अपना मत बना लेते हैं, और उसी के अनुसार अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर देते हैं।

एक तथ्य यह भी है कि भिन्नता अच्छी और स्वागत-योग्य हो सकती है। इस धरती पर हर कोई अपनी खुद की अनोखी विलक्षणताओं और व्यक्तित्व से सम्पन्न है। हरेक की पृष्ठभूमि और जीवन की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न हैं। और यही है जो जीवन को इतना दिलचस्प, इतना असाधारण व जीने योग्य बनाता है। यही है जो इस सम्पूर्ण सृष्टि को बदलता रहने वाला बहुरंगी रूप देता है। यही है जो संसार-चक्र को चलाता रहता है।

तथापि, अपने मूल में—अपने साररूप में—हम सभी समान ही हैं। सिद्धयोग पथ पर, हमारे श्रीगुरुओं ने हमें निरन्तर प्रोत्साहित किया है कि हम ऐक्य के इस बोध को पोषित करें और उसे बनाए रखें। उनकी सिखावनियों का पालन करके हमने सीखा है कि अपने मन को किस प्रकार नियन्त्रण में रखें, किस प्रकार उसे ऐक्य के बोध पर वापस लाते रहें ताकि हम इस संसार की विविधता के स्रोत को भूले बिना उस विविधता का आनन्द ले सकें; जो भेद और भिन्नताएँ हम देखते व समझते हैं उनका उपयोग अलगाव और टकराव को बढ़ावा देने के ईंधन के रूप में न करते हुए हम संसार की विविधता का आनन्द ले सकें।

काश्मीर शैवमत समझाता है कि यह समस्त विविधता परमेश्वर की रचना है। एक बार जब हम इस ज्ञान में अवस्थित हो जाते हैं तब हम यह समझ जाते हैं कि एक-दूसरे की व स्वयं की आलोचना करना कितना निरर्थक है। इसके विषय में इस तरह से सोचें : यदि हम सब मूल रूप में *एक* ही हैं तो ऐसा कुछ भी नहीं है और कोई भी नहीं है जिसकी आलोचना की जाए, जिसे आँका जाए। सही है न? और यदि यह सही है तो क्यों? खुद को आँकने के लिए कोई दूसरा होना भी तो ज़रूरी है जिसके साथ हमारी तुलना की जा सके!

यह सच है कि इस ज्ञान को अर्जित करने और उसमें दृढ़ता से स्थिर रहने का प्रयत्न—ऐक्य को याद रखने और भिन्नताओं के झाँसे में न फँसने का प्रयत्न—एक लगातार चलती रहने वाली खींचा-तानी की तरह महसूस हो सकता है। इसीलिए, थोड़ी और गहराई से जाँच करना और भलीभाँति परीक्षण करना उपयोगी है कि वास्तव में वह क्या है जो हमें अपनी भिन्नताओं में इतना जकड़े रखता है और जिसके परिणामस्वरूप हमें आलोचना करने का आदी बना देता है।

इसके कई कारण हैं। फिर भी, एक मुख्य अवगुण जो हमें मार्ग से भटका देता है, वह है, अहंकार।

‘अहंकार’ संस्कृत और हिन्दी, दोनों भाषाओं का शब्द है और यह दो शब्दों से मिलकर बना है, ‘अहं’ और ‘कार’। संस्कृत में ‘अहं’ का शाब्दिक अर्थ है, ‘मैं।’ यहाँ ‘कार’ से तात्पर्य है, बद्ध जीवात्मा से जो स्वयं को कर्ता समझता है, जो यह मानता है कि हर कार्य के पीछे वही एक कर्ता है। अतः अहंकार वह शक्ति है जिसके कारण हम सीमित या बद्ध जीव होने का भाव महसूस करते हैं—अहंकार हमें ‘मेरा’ या ‘मेरेपन’ के भाव से बाँध देता है। अहंकार हमें अपनी आत्मा से विलग कर देता है जो हमारे अन्दर सहज ही विद्यमान है, जो स्वभावतः मुक्त और असीम है। जब हमारे कर्म अहंकार के प्रभाव में किए जाते हैं तो हम उन कर्मों को कर्ताभाव से करते हैं, गर्व, घमण्ड, स्वार्थपरता और अज्ञान के साथ करते हैं।

जहाँ करुणा उदित होती है, ‘सम’ के बोध से—यह पहचानने से कि वह क्या है जो आपको इस संसार में सभी के समान और सभी के बराबर बनाता है—वहीं अहंकार उदित होता है, पृथक होने के भाव से। हम जो भेद व भिन्नताएँ देखते हैं उनसे अहंकार पनपता है और वह इन्हीं भिन्नताओं का उपयोग अपने फ़ायदे के लिए करता है। हम जिसे करुणा समझते हैं, यदि उसमें लेशमात्र भी अहंकार आ जाए, तो वह वस्तुतः करुणा *नहीं* है; बल्कि, वह तरस खाना है।

जब आप किसी पर तरस खाते हैं तो उसका अर्थ है कि आपकी ऐसी मनोवृत्ति है कि ‘मैं तुमसे कहीं अच्छा हूँ’, कि किसी स्तर पर आप खुद को दूसरे व्यक्ति से श्रेष्ठ या बेहतर समझते हैं। और चाहे आपका ऐसा करने का इरादा हो अथवा नहीं, उनके प्रति अपने व्यवहार द्वारा, अपने शब्दों व कर्मों द्वारा आप इसी मनोवृत्ति को प्रकट करते हैं। इसीलिए जब आप लोगों की तरफ़ मदद का हाथ बढ़ाते हैं और वे उसका विरोध करते हैं या उसे अस्वीकार कर देते हैं तो आपको निराश या व्याकुल होने की ज़रूरत नहीं है। उनमें स्वयं अपने प्रति सम्मान का, आत्मनिष्ठा का, स्वाभिमान का भाव है, उनमें स्वयं अपनी योग्यता का भाव है; और यदि आप उनके इन भावों को मान्यता नहीं देते तो वे आपकी इस मनोवृत्ति को तुरन्त पहचान जाएँगे। एक आमिश [उत्तरी अमरीका में एक धार्मिक सम्प्रदाय] कहावत इसे संक्षेप में व्यक्त करती है : “दूसरों को उनके स्थान पर रखने के बजाय, खुद को *उनके* स्थान पर रखो।”

विडम्बना यह है कि जब किसी व्यक्ति का अहंकार चला जाता है तो उसमें रह जाता है विशुद्ध अहं, विशुद्ध ‘मैं।’ सामान्यतः, हम इस अहं में [इस ‘मैं’ या ‘मैं हूँ,’ में] कोई विशेषण जोड़ देते हैं; और हम कौन हैं इस बारे में हमारी जो सोच है या संसार में हमारा जो एक ओहदा है, उसे यह विशेषण व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए, “मैं एक डॉक्टर हूँ” या “मैं खेलकूद में अच्छा हूँ” या “मैं अन्य लोगों जितना होशियार नहीं हूँ।” संसार-यात्रा में अपने मार्ग पर अग्रसर होते हुए इनमें से कुछ कथन हमारे

लिए बिल्कुल सटीक और उपयोगी हो सकते हैं; अन्य कथनों की सच्चाई पर हो सकता है, हमें सन्देह हो। दोनों ही स्थितियों में, वे कथन यह स्पष्ट नहीं करते कि हम *मूलतः* कौन हैं।

जब श्रीसद्‌गुरु की कृपा से हमारी अन्तर्निहित कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है तो हम इस सत्य को समझने लगते हैं। अपनी साधना द्वारा, हम यह देख पाते हैं कि किस प्रकार हमने खुद को तुच्छ 'मैं' में, अपने ही संकुचित भाव में सीमित कर लिया है, और इस सीमित भाव को ही हमने अपने अस्तित्व का मूल तत्त्व मान लिया है। इस नई समझ के साथ यह अभिज्ञान होता है कि हम अपनी पहचान को स्वयं के सीमित अहंभाव से अलग कर सकते हैं—और श्रीगुरु ने अपनी सिखावनियों व आध्यात्मिक अभ्यासों के माध्यम से हमें जो साधन प्रदान किए हैं, उन्हें कार्यान्वित कर, हम अपने अन्तर में विद्यमान परम आत्मा की अनुभूति कर सकते हैं। जैसे-जैसे हम यह पहचानने लगते हैं कि यह 'अहं' यह 'मैं हूँ' परम आत्मा ही है, यह उत्तरोत्तर 'अहं ब्रह्मास्मि,' यानी 'मैं ब्रह्म हूँ,' बनता जाता है।

***

कई बार, जब किसी ऐसी परिस्थिति से सामना होता है जिसमें करुणा व्यक्त करने की आवश्यकता होती है तो लोगों को अनिश्चितता महसूस होती है कि वे क्या करें। वे यह *सोच* सकते हैं कि वे करुणाशील हैं क्योंकि वे मानते हैं कि वे भलेमानस हैं और उनके इरादे नेक हैं। परन्तु जब वास्तविक रूप में करुणा *व्यक्त करने* का समय आता है, जब इस सद्‌गुण को व्यवहार में उतारने का समय आता है तो वे झिझक महसूस करते हैं। या वे इस तरह का व्यवहार करते हैं कि जिस व्यक्ति को वे सम्बल देना चाह रहे होते हैं, उसके प्रति करुणा के स्थान पर कुछ और ही व्यक्त हो जाता है। साफ़-साफ़ दिखाई देने वाली उनकी अनिश्चितता, उन्हें महसूस हो रही असहजता, और सम्भवतः अतीत में घटित हुए ऐसे ही अनुभवों के विषय में उनके अपने विचार और भावनाएँ एक-साथ प्रदर्शित हो जाती हैं।

ऐसा क्यों है? और यदि इस उदाहरण में आप खुद को उस स्थान पर रखें तो आपमें से कोई भी, ऐसी स्थिति में क्या कर सकता है?

जैसा कि आप जानते हैं, श्रीगुरुमाई की एक सिखावनी है, "अभ्यास, अभ्यास, अभ्यास।" गुरुमाई जी से हमने सीखा है कि प्रभावशाली तरीक़े से सद्‌गुणों का *परिपालन* करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उनका *अभ्यास* किया गया हो। जैसे किसी भी कार्य में उत्कृष्टता पाने के लिए पहले उसका अत्यधिक अभ्यास करना ज़रूरी होता है, ठीक वैसे ही आपको सद्‌गुणों का भी अभ्यास करना ज़रूरी है।

अभ्यास से आपको यह सीखने का अवसर मिलता है कि सद्‌गुणों को अभिव्यक्त करना कैसा होता है और ऐसा करते समय आपको क्या महसूस होता है। इससे आपको यह समझने में मदद मिलती है कि जिन परिस्थितियों में आप इस सद्‌गुण को अभिव्यक्त करना चाहते हैं, उनमें आपके मन, शरीर व हृदय की क्या प्रतिक्रिया होती है, और साथ ही आपको यह जानने का अवसर मिलता है कि आपके अन्दर जो कुछ भी उठ रहा है, उसका सामना आप कैसे करेंगे। फिर जब आपको अपने जीवन की किसी प्रत्यक्ष परिस्थिति में और किसी के हित के लिए यह सद्‌गुण अभिव्यक्त करना हो, तब आप पाते हैं कि आपका मन स्पष्ट व स्थिर है। आप पाते हैं कि आप अपने आन्तरिक बल में दृढ़ता से स्थित है। आप पूरे यक़ीन के साथ उस परिस्थिति में आगे बढ़ पाते हैं और उसे अपने आचरण द्वारा व्यक्त कर पाते हैं। आपको बस पता होता है कि क्या करना है।

सालों से आप ‘सद्‌गुण वैभव’ पर व्याख्याएँ पढ़ते आ रहे हैं जो कि जून माह में, ‘आनन्दमय जन्मदिवस’ के माह में गुरुमाई जी द्वारा हर रोज़ प्रदान किए जाने वाले सद्‌गुण हैं। ऐसा करते हुए आपने हर व्याख्या के अन्त में दिए गए अभिकथन को भी पढ़ा व उसका अभ्यास किया होगा।

ये अभिकथन गुरुमाई जी ने प्रदान किए हैं। उन्होंने ये इसलिए दिए हैं जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि सिद्धयोगियों द्वारा लिखी गई व्याख्याओं में आपने जो पढ़ा है, उसका सार याद रखने के लिए आपके पास एक उपाय हो, साथ ही उस सद्‌गुण का अभ्यास करने के लिए एक सहज-सुलभ तरीक़ा हो। आप इन अभिकथनों को दोहरा सकते हैं। आप इन्हें मन ही मन या ज़ोर-से बोलकर दोहरा सकते हैं, और जैसे-जैसे इन सद्‌गुणों के विशेष लक्षण आपके अन्दर उतरते जाएँ, जैसे-जैसे आप अपने अन्दर विद्यमान इन सद्‌गुणों को पहचानते जाएँ, वैसे-वैसे आप यह महसूस कर सकते हैं कि उस सद्‌गुण की शक्ति आपके अन्दर प्रवाहित हो रही है।

साथ ही, हमारे पास सद्‌गुणों का अभ्यास करने का एक और तरीक़ा है। सिद्धयोग पथ पर गुरुमाई जी ने धारणाएँ प्रदान की हैं, एक ऐसा साधन जिसके माध्यम से लोग नामसंकीर्तन में पूरी तरह उपस्थिति रह सकें और अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को नामसंकीर्तन में लीन कर सकें, या फिर इन धारणाओं के माध्यम से वे ध्यान में उतर सकें ताकि वे उस अभ्यास का अनुभव करने के लिए पूरी तरह तैयार हो सकें व उससे अधिकाधिक लाभ उठा सकें। गुरुमाई जी ने २४ जून, २०२२ को जो सद्‌गुण प्रदान किया है—समानुभूति का सद्‌गुण—उसका आप अभ्यास कर सकें इसके लिए, हमें अमी और गरिमा को समानुभूति में निहित एक गुण, करुणा पर धारणा लिखने के लिए गुरुमाई जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है।

धारणा के लिए निर्देश नीचे दिए गए हैं। कृपया यह सुनिश्चित करें कि आप इस अभ्यास को पूरे ध्यान से कर रहे हैं; आप इसे एक शान्त और एकान्त स्थान में करें, और किसी अन्य कार्य के बीच में इस अभ्यास को न करें [जैसे कि टहलना या गाड़ी चलाना]।

***

एक सहज आसन में बैठें।

अपने श्वास-प्रश्वास के सहज प्रवाह को देखें।

आप चाहें तो अपनी आँखें बन्द कर सकते हैं।

अब, एक ऐसे दृश्य की कल्पना करें जिसमें आप किसी ऐसे जीव के साथ हैं जो आपकी करुणा से लाभान्वित होगा।

यह एक व्यक्ति हो सकता है।

कोई पशु हो सकता है।

यह एक पौधा या वृक्ष भी हो सकता है।

कुछ क्षण इस दृश्य की बारीकियों पर ग़ौर करें।

आप कहाँ हैं? आस-पास का माहौल कैसा है?

परिस्थिति का अवलोकन करें।

उस व्यक्ति—या पशु, या पौधे—को देखकर क्या लगता है कि वह कैसा महसूस कर रहा होगा?

उसे क्या चाहिए?

उसकी अन्तर-स्थिति कैसी है?

अब कल्पना करें कि, आप उसके प्रति अपनी करुणा व्यक्त कर रहे हैं।

आप क्या कहते हैं?

आप क्या करते हैं?

आप यह कैसे करते हैं?

इस दृश्य में आप करुणा व्यक्त कर रहे हैं,

ध्यान दें कि ऐसा करते हुए आपके अन्तर में क्या घटित हो रहा है।

आप अपने शरीर में क्या महसूस कर रहे हैं?

अपने शरीर का अवलोकन करें,

सिर के ऊपरी भाग से लेकर

पाँव की उँगलियों तक।

आपके शरीर के अलग-अलग भागों में जो हो रहा है, उसे बस देखते रहें।

इस दृश्य में आप करुणा व्यक्त कर रहे हैं,

ऐसा करते हुए आपके मन में क्या घटित हो रहा है।

क्या कोई विचार आपके मानसपटल पर कौंध रहे हैं?

करुणा व्यक्त करते हुए,

आपके हृदय में क्या हो रहा है?

आपके अन्दर कौन-सी भावनाएँ उठ रही हैं?

देखें कि आपके अन्दर और कौन-से मनोभाव उमड़ रहे हैं।

देखें कि आप अपनी त्वचा के भीतर कौन-से अन्य संवेदन महसूस कर रहे हैं।

देखें कि क्या आपका मन सुन्न हो गया है या उसमें ऊर्जाओं का संचार हो रहा है।

देखें कि क्या आपकी आँखें आँसुओं से नम हो गई हैं।

देखें कि क्या मौन आपको आच्छादित कर रहा है।

बस *साक्षीभाव* से देखते रहें—यह पहचानें कि जब आप करुणा व्यक्त करते हैं तब आप अपने अन्तर में वास्तव में कैसा अनुभव करते हैं।

हरेक अनुभव अनूठा है, और हरेक अनुभव आपका अपना है।

आपके अन्तर में जो कुछ घटित हो रहा है, उसके साथ बने रहें।

अब, एक बार फिर अपना ध्यान अपने श्वास-प्रश्वास पर लाएँ।

अपने श्वास-प्रश्वास के सहज प्रवाह को देखें।

अन्दर आते श्वास और बाहर जाते प्रश्वास को देखें।

आप अपनी आँखें खोल सकते हैं।

अपनी करुणा कैसे व्यक्त की जाए, इसका अभ्यास करने के लिए खुद को धन्यवाद दें।

इस अभ्यास को करने से आपने अपने बारे में जो सीखा है, उस पर ज़रूर मनन करें।

करुणा के विषय में आपके लिए जो भी सहज ही उभरा है, उस पर ज़रूर मनन करें।

इस धारणा का अभ्यास करते रहना आपके लिए लाभप्रद हो सकता है, जिससे आप करुणा को व्यक्त करने की अपनी क्षमता को विकसित कर सकेंगे—करुणा जो कि समानुभूति सद्‌गुण का मुख्य पहलू है।

क्रमशः . . .

© २०२२ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।